Golden Research Thoughts
Vol -1 , ISSUE –7, Jan 2012
ISSN:- 2231-5063
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

महानगर की चकाचौंध में पिसता जनजीवन

प्रा. राजेश एम. पटेल
श्री. एस. आर. भाभोर आट्र्स कॉलेज सींगवड.

प्रस्तावना

दूर से देखने पर महानगर की चकाचौंध हर एक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करती है। हर आदमी एक बड़े शहर में अच्छा घर बनाकर रहना चाहता है। लेकिन इस चकाचौंध के पीछे का जीवन अपने–आप में बहुत बड़ा सच छुपाए हुए है। वह सच, जिसे महानगर में रहता हुआ हर व्यक्ति जीता है। हमारे समाज में सभी वर्गों के लोग रहते हैं। महानगर में अमीर और अमीर होता जा रहा है और गरीब और गरीब। इन महानगरों की सबसे बड़ी समस्या है, उच्च वर्ग द्वारा निम्न और मध्य वर्ग का शोषण किया जाना, चाहे वह ऑफिस में काम करती महिला हो या कपड़ों की दुकान पर काम करता पुरुष। शहरों में जीवन संघर्षों से भरा होता है। कोई व्यक्ति अपना घर बनाने के लिए संघर्ष करता है, तो कोई अपने बच्चों को सुविधाएं प्रदान करना चाहता है, कोई व्यक्ति कर्ज से बाहर निकलने के लिए घर का नौकर तक बन जाता है, तो कोई अपनी नौकरी, पैसे, बीबी–बच्चों के लिए अपने माता–पिता को बुढ़ापे में छोड़कर चला जाता है। महानगरों में यह आम ही देखा जाता है कि पति–पत्नी दोनों ही अर्थ की कमी के कारण नौकरी करते हैं।

इन महानगरों की ऊँची–ऊँची इमारतों में सैंकड़ों की तदात में लोग रहते हैं और इन सब लोगों का जिन्दगी जीने का ढंग अलग–अलग होता है। इन महानगरों में ऐसी स्त्रियों को भी स्थान प्राप्त है जो इसलिए शादी नहीं कर पाती, क्योंकि घर की परिस्थितियाँ ही उसे शादी करने का हक नहीं देती। ऐसी स्त्रियां घर की जिम्मेदारियाँ निभाते हुए ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देती हैं। महानगर की चकाचौंध व्यक्ति को अपनी ओर प्रभावित तो कर लेती है, पर यहाँ रहकर जीवन जीना व्यक्ति को संघर्ष करता सिखा देता है। उच्च वर्ग को उतना फर्क नहीं पड़ता जितना मध्य और निम्न वर्ग इस महानगर की चकाचौंध में पिसता है। यदि कोई शहर महानगरों की कतार में अपनी जगह बनाए हुए है, तो सब मध्य और निम्न वर्ग के लोगों के द्वारा ही है। महानगरों की चकाचौंध इन लोगों की दयनीय स्थिति को अपने में छुपाए हुए है।

हिन्दी साहित्य जगत् की सुप्रसिद्ध लेखिका सुधा अरोड़ा महानगर में व्याप्त निम्न, मध्य वर्ग के लोगों के जनजीवन को देखकर अत्यन्त व्यथित हैं। इसका एक कारण यह हो सकता है कि वे खुद महानगर कलकत्ता से सम्बन्ध रखती हैं। उनके द्वारा रचित कहानी–संग्रह 'महानगर की मैथिली' उपरोक्त महानगरीय जीवन की अभिव्यक्ति करता है। सुधा अरोड़ा ने इस कहानी–संग्रह की तमाम कहानियों में महानगर की विसंगतियों, मशीनी जीवन, अर्थ का अभाव, भ्रष्टाचार, दाम्पत्य जीवन की समस्याओं, कामकाजी महिलाओं की दर्द भरी दास्तां, वृद्धों की दयनीय स्थिति, बच्चों के ऊपर पड़ रहा महानगर का प्रभाव आदि विषयों की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। कहानीकार ने सीधी–सपाट भाषा के साथ अपनी कहानियाँ रची हैं, जिन्हें पाठक सरलता से हृदयगमन कर लेते हैं।

महानगरीय जीवन अत्यन्त कठिनाईयों से भरा होता है। महानगर में रहतु हुए व्यक्ति को हर चीज़ की जरूरत पड़ती है–घर, पैसा, अच्छी नौकरी आदि। हर व्यक्ति को जिन्दगी में पैर–पैर पर कठनाईयों का सामना करना पड़ता है। क्योंकि इन्सान की परिस्थितियां ही ऐसी बन जाती हैं कि उसे संघर्ष भरा जीवन

जीना पड़ता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'बोलो, भ्रष्टाचार की जय!' महानगरीय जीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति करती है। हमारे समाज की सबसे बड़ी बुराई भ्रष्टाचार है। महानगर हो और भ्रष्टाचार न हो ऐसा हो ही नहीं सकता। भ्रष्टाचार भी व्यक्ति के जीवन का एक अंग बन चुका है। सुधा अरोड़ा ने अपनी इस कहानी में भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज़ उठाने वाली स्त्री की स्थिति को बयां किया है। इस कहानी की पात्रा(बेनाम) अपने घर की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए एक बड़ी लिमिटेड कम्पनी में काम करती है। उसके बॉस मनिहार 'श्रमिक अधिकार–सुरक्षा समिति' बनाने के लिए धोखे से सब कर्मचारियों से चन्दा इकट्ठा कर लेते हैं। वह पाँच हजार का बोनस जिससे उन्होंने घर के लिए टी॰ वी॰, फ्रिज आदि वस्तुएं खरीदनी थी, वही उस स्त्री को अपने बॉस मनिहार को देने पड़ते हैं। वह सोचती है, ''उस दिन हमारी हैसियत पाँच हजार की थी, सो हमने बुझे हुए दिल और ओढ़ी हुई मुस्कराहट से अपने मुल्तवी किये गये सपनों का बंडल मनिहार को थमा दिया।'' 1 निम्न वर्ग को सपने देखने का भी हक नहीं है, उनके सपनों पर भी उच्च वर्ग का अधिकार होता है। आठ महीने बीत जाने पर भी इस समिति का कोई पता नहीं चलता, तो स्त्री अपने पैसों को वापिस लेने के लिए अपने बॉस के पास जाती है, उससे उसी के पैसों का सुबूत मांगा जाता है। मनिहार कहता है, ''मुझे तो याद नहीं। उसकी कोई रसीद? कोई सबूत?... देखो, मेरे पास तुम्हारे कोई पांच–वांच हजार रुपए नहीं, माफ करना।... 'हां, तुम्हे जरूरत है तो यह लो...'उन्होंने जेब से सौ का एक कड़कता चमकदार नोट निकाला, 'इस वक्त मेरे पास यही है...'' 2 मनिहार जैसे लोग अपने आप को बचाने के लिए निम्न वर्ग का मुँह पैसे देकर बंद करवाने पर तुले रहते हैं। कहानीकार ने इस बात को दिखाकर समाज के मुँह पर तमाचा मारा है कि ''एक औसत मध्यवर्गीय नौकरी–पेशा औरत के लिए अपनी जमा–पूंजी इतनी आसानी से अपनी आंखों के सामनी छिन जाने और खैरात के कड़कते नोट की चमक दिखाये जाने से बड़ा सदमा और क्या हो सकता था?'' 3 उन पैसो का ''हुआ यह कि शहर के सबसे संभ्रांत इलाके में मिस्टर मनिहार ने अपनी पत्नी की नाम से बंगला बनाने के लिए जमीन खरीद ली।'' 4

मनिहार जैसे लोग भ्रष्ट तरीके से लोगों का शोषण करते है और मध्य, निम्न वर्ग के लोग यदि उनके विरूद्ध आवाज़ उठाए तब भी सजा निम्न वर्ग को मिलती है। ''वह सोचती है, ''मैंने अपने बॉस–मिस्टर बी॰ के॰ मनिहार के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश

करना चाहा था और उसकी बड़ी महंगी कीमत मुझे चुकानी पड़ी थी।'' 5 उसका तबादला इस महानगर से तीन हजार किलोमीटर दूर नये महानगर में कर दिया जाता है। स्त्री कहती है, ''तबादले के आदेश को रद्द करवाने की अपनी सारी फिजूल कोशिशों के बाद जिस दिन आखिरकार मुझे अपनी नौकरी से इस्तीफा देना पड़ा, धड़कन ने पहली बार मेरा साथ छोड़ा।... तो मुझे दिल का मरीज घोषित किया जा चुका था'' 6 अपने बॉस द्वारा सताई गई स्त्री दिल का दौरा पड़ने से मर जाती है। इस कहानी की पात्रा जैसे ना जाने कितने व्यक्ति समाज में हैं जो ऐसा ही जीवन जीते हुए मर जाते हैं और भ्रष्ट लोगों द्वारा उनकी मौत पर जाकर किये दुःख का नाटक भी उन्हें वाह–वाही दिलवा देता है।

महानगरों में मजदूर वर्ग के लोग अधिक पाए जाते हैं। इन्हीं मजदूरों या नौकरों की सहायता से ही महानगर की दुकानों, फैक्टरियों, घरों आदि में काम होता है। यहाँ पर भी मालिक पैसे बचाने की अनेक योजनाएं बनाते हैं और निम्न वर्ग की हालत का नजायज फायदा उठाते हैं। सुधा अरोड़ा ने अपनी कहानी 'सात सौ का कोट' में ऐसे पात्र को दिखाया है, जो अपनी गरीबी के कारण अपने मालिक पर पूरी तरह से निर्भर रहता है। रामदीन कपड़े सिलाई की दुकान पर काम करता है। गलती से उससे विदेश से आए आदमी का विदेशी कपड़े से बना कोट जल जाता है। उस कोट की भरपाई के लिए रामदीन का मालिक सात सौ रुपये उस विदेशी व्यक्ति को देता है। रामदीन का मालिक वह पैसे रामदीन की तनख्वाह से काटना चाहता है। मालिक इतना स्वार्थी था वह कहता, ''सात सौ की चपेड़ खानेवाला मैं भी नहीं था।'' 7 वह रामदीन की गरीबी का फायदा उठाता हुआ कहता है, ''गरीब को अकेले में डांट–डपट दो, तो उस पर कोई असर नहीं होगा, लेकिन उसके जातभाइयों के सामने उसे जलील कर दो, तो वो पानी–पानी हो जायेगा, मुँह ऊँचा नहीं करेगा।'' 8 दुकान चलाते हुए काम करने वालों की बजह से पैसो का मुनाफा हो वह मालिक का और यदि काम करते हुए कोई नुक्सान हो तो वह काम करने वाले के जिम्मे। रामदीन का मालिक भी ऐसा ही करता है। रामदीन को डांटते हुए कहता है, ''तुम्हारी जरा–सी लापरवाही से मेरे सात

सौ रुपये उड़ गये। कितनी बार समझाया है कि रूमाल रखकर इस्त्री किया करो।'' 9 रामदीन जैसे पात्र महानगर की चकाचौंध से प्रभावित होकर किसी–न–किसी तरह अपने पैर यहाँ जमाना चाहते हैं, इसीलिए वह अपनी 100रुपये तनख्वाह से सप्ताह में 10रुपये मालिक के पास कटवाता। मालिक के घर मुफ्त में रहने के लिए उसकी बीबी उनके घर का सारा काम करती थी। रामदीन और उसकी पत्नी की तरह बहुत से पात्र हैं जो समाज में ऊपर उठना चाहते हैं, परन्तु इस महानगर द्वारा मिली परिस्थितियों के चलते वे गरीबी की दलदल में नीचे–ही–नीचे धसते जाते हैं।

व्यक्ति के सारे सपने पैसों पर टिके होते हैं। पैसों की कमी होने के कारण व्यक्ति सपने देखना भूल जाता है। यदि कुछ याद रहता है तो वह है पैसा कैसे कमाया जाए और घर को कैसे चलाया जाए। इस महानगरों में पैसे के बिना व्यक्ति सांस तक नहीं ले सकता। सभी काम पैसे पर आधारित होते हैं। सुधा अरोड़ा ने ऐसी ही पात्रा को दिखाया जो इन महानगरों की चमक को खोखला मानती है और अपने परिवार को हर तरह की सुविधा देने के लिए खुद शादी नहीं करती। 'इस्पात' कहानी की पात्रा मित्रा कालेज में पढ़ाती है। वह अपने जीवन के संघर्षों से जूँझती हुई बिना शादी किये 40 वर्षीय महिला बन जाती है। मित्रा अपनी सहेली को बताती है, ''जब वह पन्द्रह साल की थीं, तभी उनके 'बाबा' की कार–ऐक्सीडेन्ट में मृत्यु हो गयी थी। उनसे छोटे पांच भाई–बहन थे। तब से ट्यूशन करके वह खुद पढ़ीं और बाद में सबको पढ़ाया।'' 10 ऐसे लोगों के साथ समाज के लोग भी बुरा व्यवहार करने से पीछे नहीं हटते। मित्रा बताती है कि ''एक प्रोफेसर से बड़ी मित्रता हुई थी, लेकित जब मैंने उन्हें शादी करने को कहा तब वे बोले–तुम जैसी बदसूरत औरत से शादी कौन करेगा?... उसके बाद मैंने शादी के बारे में सोचा ही नहीं और अपनी जिन्दगी में किसी की कमी भी नहीं लगती।'' 11 मित्रा इतनी मुश्किलों के बावजूद अपनी सोच को साकारात्मक रखते हुए अपनी जिन्दगी में आगे बढ़ती जाती है और कलकत्ता जैसे महानगर में अपने दूखों को भूलकर मस्त हो जाती है।

म्हानगर की ऊँची–ऊँची इमारतों में रहते लोग अपने स्वार्थ को ज्यादा महत्त्व देते हैं। 'अपना उल्लू सीधा करना' कहावत महानगर की ऊँची इमारतों में रहने वाले लोगों पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। 'तेरहवें माले से जिन्दगी' कहानी की पात्रा मिसेज शर्मा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गरीबों के साथ हो रहे अत्याचार में भी अपना फायदा ही सोचती है। महानगरों के घरों में नौकरानी को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। नौकरानी के एक दिन न आने पर घर वालों को लगता जैसे जिन्दगी रूक गई। मिसेज शर्मा अपने घर में नौकरानी रखने के लिए परेशान होती है, बहुत सी नौकरानियों के बाद उसे शान्तिबाई मिल जाती है, जो सुबह से शाम तक उनके घर में रहकर काम करती है। मिसेज शर्मा का बस चले तो वह रात को भी उसे अपने घर पर ही रखे। मिसेज शर्मा को ''यह सोचकर तसल्ली हुई थी कि अपने बूढ़े बीमार पति के मरने के बाद वह पूरी तरह इस घर की हो जायेगी।'' 12 परन्तु शान्तिबाई अपने बेटे से दूःखी होकर खुइ ही मर जाती है और मिसेज शर्मा पर बाई ढूढ़ने का पहाड़ टूट पड़ता है। वह अपने तेरहवें माले से देखती है कि सामने झोंपड़ियों से अजीब सी अवाज़ें आ रही थी। तब उसे याद आता है ''शान्तिबाई ने बताया था कि इस ओर की दरिया किनारे की झुग्गियों की सफाई का एलान आ गया है, हर परिवार को सौ–डेढ़ सौ रुपये मिलेंगे– अपने बेघर होने का मुआवजा। करीब तीन–सवा तीन सौ परिवार उजड़ रहे थे। सूखे हुए, नंगे बदन, रिरियाते हुए बच्चे लोगों के पैरों के बीच इधर–उधर लुढ़क रहे थे, पिस रहे थे।'' 13 यह महानगरीय जीवन ही है जहाँ एिड़ाकर लोग घर से बेघर हा रहे थे, वहीं मिसेज शर्मा जैसे लोगों को अपने स्वार्थ के लिए उनका बेघर होना भी अच्छा लग रहा था। मिसेज शर्मा उनकी हालत को देखकर सोचती है, ''इन बेघर हुए परिवारों में से कई औरतों को ऐसे काम की तलाश होगी, जहां काम के अलावा सिर पर छत भी मिले। हां, सचमुच अब एक नौकरानी का स्थाई बन्दोबस्त होने में कोई दिक्कत नहीं होगी।'' 14 मिसेज शर्मा जैसे लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति होता देख चैन की नीद सोते हैं। महानगरीय जीवन में स्वार्थपरता को आम देखा जा सकता है।

इसी स्वार्थीपन के चलते महानगर में ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो अपने पैसे को अधिक महत्त्व देते हैं और अपने बीबी–बच्चों को ही मात्र अपना समझते हैं। ऐसे लोग अपने बूढ़े माता–पिता का सहारा बनना स्वीकार नहीं करते। सुधा अरोड़ा ने महानगरीय जीवन में पिसते वृद्धों की स्थिति को भी अपनी

कहानी का आधार बनाया है। इनकी कहानी 'दहलीज पर संवाद' इसी बात की अभिव्यक्ति करती है। बूढ़े माँ–बाप सोचते हैं कि उनका बेटा बूढ़ापे में उनका सहारा बनेगा, लेकिन युवा पीढ़ी को पुरानी नहीं नई चमक–दमक वाली जिन्दगी अधिक पसन्द है। वे अपने ऊपर किसी का भी दबाव

सहन नहीं करते, इसलिए अपना जीवन अलग रहकर जीना चाहते हैं। 'दहलीज पर संवाद' कहानी का राज अपनी पत्नी इंद्रा और बेटे टिन्नी के साथ अपने माता–पिता से दूर रहता है। दस दिन के लिए वह अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने माता–पिता के पास रहने आता है। उसे अपने माता–पिता से ही भय होने लगता है कि कहीं उनकी बीमारी उनके बच्चे को न लग जाए। इंद्रा राज से रोती हुई कहती है कि ''बीमारों के बीच उसके बच्चे को कुछ हो गया तो...'' 15 राज इंद्रा की बात सुनकर वहां से जाने के लिए तैयार हो जाता है और माँ–बाप दोनों फिर अकेले रह जाते हैं। माता–पिता को जब अपने बच्चों के सहारे की ज्यादा जरूरत होती है, तब वह छोड़कर चले जाए तो उनके लिए उनका जीवन निरर्थक हो जाता है। उस समय उन्हें लगता है कि इस संसार से चले जाना ही बेहतर होगा। कहानीकार वृद्धों की मानसिकता को समझती हुई उनकी दयनीय हालत को कहानी के पात्रों के मुख से कहलवाती है। मेजर लाल अपनी पत्नी सुमित्रा से कहता है, ''मुझे तो लगता है? –क्या लगता है? –बताऊं? –हां। –कि हम न इधर हैं, न उधर... –क्या? –तुम्हें ऐसा नहीं लगता? –कैसा? –कि हमें अब... –हाय मेरे रब्बा, मनहूस बातें ही निकालोगे... –नहीं क्या? –अब बस भी करो... –सच बताओ, क्या तुम्हें भी ऐसा लगता है?'' 16 यह मेजर लाल और सुमित्रा की कहानी नहीं है, यह महानगर के बहुत से घरों की कहानियों को बयां करती कहानी हैं। महानगरों में व्याप्त वृद्धाश्रम इस बात की पुष्टि करते हैं कि वृद्धों को सम्भालने वाले या तो खुद उन्हें छोड़ कर चले जाते हैं या वृद्धों को घर से बाहर निकाल देते हैं।

अस्तु, सुधा अरोड़ा ने आलोच्य कृति में महानगरीय परिवेश एवं वहाँ होने वाले कार्यव्यापारों का अवलोकन करते हुए, उनमें अपने अस्तित्त्व की लड़ाई में लग्न लोगों का चित्रण किया है। कहानीकार ने महानगर के मध्यवर्गीय, निम्न मध्यवर्गीय परिवार के दैनिक कार्यों, घटनाओं आदि को दिखाकर रोजी–रोटी के लिए संघरत लोगों के साथ–साथ प्रदर्शनवाद की आँधी में झुलसते जीवन को भी चित्रित किया है। लेखिका ने आलोच्य कहानियों को आधार बनाकर यह तथ्यात्मक अभिव्यक्ति की है कि इस परिवेश में उच्च वर्ग पूर्णतः प्रदर्शनवाद में लिप्त है जिसकी कोरी नकल उच्च मध्य वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न मध्य वर्ग करता है परन्तु आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं होने के कारण उसके दुष्परिणाम का शिकार हो जाता है। इन कहानियों में महानगरीय परिवेश के यांत्रिक जीवन, आर्थिक तंगी की मार झेल रहे दाम्पत्य जीवन, वृद्धों के प्रति होने वाले असंवेदनशील व्यवहार, बच्चों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की यथार्थ अभिव्यक्ति की गई है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अरोड़ा, सुधा, 'महानगर की मैथिली', नयी दिल्लीः नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण–1987, पृष्ठ–6
2. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–7
3. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–7
4. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–6
5. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–3
6. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–4
7. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–25
8. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–25
9. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–25
10. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–62
11. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–62
12. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–32

13. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–36
14. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–37
15. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–92
16. पूर्वोक्त, 'महानगर की मैथिली', पृष्ठ–93

प्रा. राजेभा एम. पटेल
श्री. एस. आर. भाभोर आर्ट्स कॉलेज सींगवड.